International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 389-392

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 389-392
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-03-2017
Accepted: 05-04-2017

Dr. Atiya Danish
Post Doctoral Fellow
(UGC) Department Sanskrit.
Working Place MLNJNK Girls College Saharanpur, State Uttar Pradesh, India

Correspondence
Dr. Atiya Danish
Post Doctoral Fellow
(UGC) Department Sanskrit.
Working Place MLNJNK Girls College Saharanpur, State Uttar Pradesh, India

यजुर्वेद में गृहस्थाश्रम – वर्तमान परिपेक्ष्य में

Dr. Atiya Danish

सारांश
किसी भी जाति का धर्मशास्त्र उसका आचारशास्त्र होता है उस आचारशास्त्र में प्रतिपादित आचरण का अनुसरण करके वह जाति उन्नति करती है भारत का धर्मशास्त्र भी उस जाति का आचारशास्त्र है। धर्मशास्त्र में वेद स्मृतियां आते हैं संस्कृत वाङ्मय का महत्वपूर्ण भाग वेद भारत के धर्मशास्त्र के रूप में माने जाते हैं। वेदों में यजुर्वेद द्वितीय स्थान पर है। इसमें वर्णित आश्रम व्यवस्था और उसमें भी गृस्थाश्रम वास्तव में वर्तमान काल में प्रांसगिक है, इसको नकारा नहीं जा सकता। वस्तुतः गृहस्थाश्रम परमेश्वर की सृष्टि का जागतिक रूप है। इसी की छटा छाया में मानव एक से युगल बनता है और कालान्तर में एक से अनेक बनता है। सन्ततिक्रम से वंश बेलि को आगे बढ़ाता है। गृहस्थाश्रम में ही धनो प्लार्जन होता है। धनप्राप्ति के लिये नित्य नूतन साधनों का अनुसन्धान होता है तो दूसरी ओर काम भी चरितार्थ होता है। मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्ट्य का अन्तिम तथा चरम लक्ष्य स्वीकार किया गया है किन्तु उस तक पहुँचने का आधार भी गृहस्थाश्रम ही है। यजुर्वेद में एक आदर्श गृहस्ती को किस प्रकार के कर्म करने चाहिए, कैसा जीवन यापन करना चाहिए इस पर प्रकाश डाला गया है। यदि यजुर्वेद में प्रतिपादित गृहस्थ के दायित्वों, करणीय कर्म, अकरणीय कर्म, आदि का अनुसरण किया जाए तो आज के युग में समाज से अव्यवस्था, अशान्ति, भ्रष्टाचार, आदि का स्वतः समापन हो जाएगा।

कूट शब्दः यजुर्वेद, गृहस्थाश्रम, धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र

प्रस्तावना
अद्वितीय सर्वव्यापक परमपिता परमेश्वर के मन से सृष्टि की इच्छा जागृत हुई 'एकोऽहं बहुस्याम्'' और तभी जगत् की सृष्टि हुई। मानव भी एकाकीपन से मुक्त होने के लिए परिवार की आवश्यकता का अनुभव करता है और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। वस्तुतः गृहस्थाश्रम परमेश्वर की सृष्टि का जागतिक रूप है। इसी की छत्रदाया में मानव एक से युगल बनता है और कालान्तर में एक से अनेक होता है। सन्ततिक्रम में वंशबेलि को आगे बढ़ाता है। गृहस्थाश्रम सृष्टिकर्ता की सृष्टि को रुकने नहीं देता उसे निरन्तर आगे बढ़ाता रहता है। अन्य समस्त आश्रमों ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ, सन्यास एवं जागतिक व्यापारों को संरक्षण देता है। उनका पोषण करता है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में सब आश्रमों और वर्णों का आश्रय स्थान है। यजुर्वेद के अनुसार गृहस्थ के समस्त कर्म, नियम, भोग धर्म के नियमों से बन्धें होते हैं। गृहस्थ का आचरण ही उसे आवास को सुखमय बनाता है। विद्वानों और देवताओं की तुष्टि पुष्टि भी गृहस्थों के द्वारा होती है।[1] यजुर्वेद ने गृहस्थ के मांगलिक विस्तार की कामना की है। गृहस्थधर्म की विश्वपालिनी कला का विस्तार अन्तरिक्ष तक हो। वायु देवता अपनी विशेष शक्ति से गृहीजनों की रक्षा करें।[2]

गृहस्थाश्रम – विवेचन
भारतीय पुरुषार्थ चतुष्ट्य में से प्रथम तीन पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम का प्रत्यक्ष सम्बन्ध गृहस्थाश्रम के साथ है। वह सत्य है कि मोक्ष को पुरुषार्थ चतुष्ट्य में अन्तिम तथा चर्म लक्ष्य स्वीकार किया जाता है किन्तु उस तक पहुँचने का आधार भी गृहस्थाश्रम ही है। तभी यर्जुवेद में गृहस्थ को कहा गया है कि तुम्हारे धर्म, अर्थ कामादि समस्त पुरुषार्थ सफल हों, पुत्र पौत्र द्वारा निरन्तर उन्नति करो।[3]
न केवल यर्जुवेद में अपितु सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय ने गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ आश्रम स्वीकार किया है। मनु के अनुसार ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और पति ये तीनों पृथम–पृथक आश्रम गृहस्थाश्रम से उत्पन्न हुये हैं। वेद और स्मृति से चलने वाला गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है क्योंकि गृहस्थाश्रम तीनों आश्रमों का पालन करता है। जैसे समस्त नदी एवं नद समुद्र में जाकर स्थित होते हैं वैसे ही समस्त आश्रम गृहस्थाश्रम के आश्रय से जीवित रहते हैं।[4]

गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर स्त्री पुरुष कृतकृत्य होते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर उन्होंने जो विद्या सीखी है उसका प्रयोग गृहस्थाश्रम में किया जाना चाहिए।[5] गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए विवाह, संस्कार आवश्यक है। विवाह के बिना न तो परिवार बनता है न ही गृहस्थाश्रम का पूरी तरह पालन किया जा सकता है। इस कारण विवाह को गृहस्थाश्रम की आधाारशिला कहना उचित ही है। विवाह के पीछे मानवीय प्रवृत्ति काम को मर्यादित करना प्रमुख उद्देश्य रहा है। नारी और पुरुष दोनों के सहयोग से ही संसार संसरणशील होता है किन्तु उनका विवाहेतर सम्पर्क अनैतिक तो होता है साथ ही सामाजिक मर्यादा भी नहीं रहती है। एक ओर समाज में एकाकी पुरुष अपूर्ण है तो दूसरी ओर एकाकिनी नारी भी अनुपादेय है। संयोग से ही सृष्टि का विस्तार सम्भव है। पशु जगत् से पृथक सभ्यता, शालीनता, नियमबद्धता तथा नैतिकता से इस कार्य का तभी सम्पन्न किया जा सकता है जब उसे विवाह के संस्कार के अन्तर्गत सीमित किया जाये।

विवाह के लिये यजुर्वेद में वर तथा कन्या की योग्यता का उल्लेख किया गया है तथा उत्तम चरित्र को आवश्यक माना है। यजुर्वेद के अनुसार ''शुद्ध आचार वाले स्त्री पुरुष विवाह करें। अशुद्ध मनुष्य विवाह के अयोग्य है। कुमारियों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि वह पवित्र आचरण और उत्तम से उत्तम विद्याओं के अर्जन की साधना पूर्ण करें। नारियां चरित्रवती, विदुषी बने फिर अपने अनुरूप विद्वान सदाचारी पुरुष से विवाह करें। पुरुषों से भी कहा गया है कि वे अनुरूप विदुषी, शीलवती कुमारियों को पत्नी रूप में वरण करें।[6]

वस्तुतः यजुर्वेद का यह कथन कि शुद्ध आचरण वाले स्त्री पुरुष विवाह करें।[7] आज उतना ही उपयोगी है जिनका यजुर्वेद काल में था। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि शिक्षा के प्रचार प्रसार तथा वैज्ञानिक दृष्टि से अत्याधिक उन्नत होते हुये भी केवल कुछ परिवारों को छोड़कर नारी और पुरुष का चरित्र नहीं देखा जाता। अधिकांश परिवारों में कन्या अयोग्य पात्र को सौंप दी जाती हैं। विवाह के क्षेत्र में ऐसे समझौते अधिकतर पर्याप्त दहेज न दे पाने के कारण अथवा परिवार में एकाधिक पुत्री सन्तानों की उपस्थिति या कन्या के संरक्षक की किसी असमर्थता के कारण किये जाते हैं। आज इक्कीसवीं शताब्दी में यजुर्वेद का यह उपदेश यदि ग्राह्य हो तो अनेकों कन्याओं को विवाह के नाम पर नरकीय यातना न भोगनी पड़े।

विवाह का उद्देश्य केवल भोग नहीं है। भोग प्रवृत्ति तो मनुष्य और पशु में समान रूप से पाई जाती है। अन्तर केवल इतना है कि उच्छृंखल कामवासना पशु जीवन की परिचायिका है तो मर्यादित काम मनुख्य की सभ्यता सृजनशीलता तथा पारस्परिक सहयोग का प्रतीक है। विवाह का उद्देश्य है उच्चकोटि की सन्तान उत्पन्न करना। यजुर्वेद में सन्तानोत्पादन के लिये गृहस्थाश्रम में प्रवेश विहित माना गया है। ''जनत्यैत्वासंयौमी''[8] संतान प्राप्ति ही गृहस्थाश्रम का मुख्य उद्देश्य तथा कर्तव्य है। तभी यजुर्वेद में गृहस्थ को ऐसी सन्तानें उत्पन्न करने का उपदेश दिया गया है जो माता पिता भक्त हों।[9] यजुर्वेद का यह मन्त्र ''उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ साध्वी स्त्रियां राजेधर्म से पवित्र होकर पति का सेवन करती हैं ''इस बात को लक्षित करता है उस समय ऋतुकाल में सहवास का नियम बनाकर पति पत्नि के सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया है। यजुर्वेद में गृहस्थ ने देवताओं से पुत्र पौत्र प्राप्ति की प्रार्थना की है।[10]

यजुर्वेद के अनेक मन्त्रों में पवित्र सन्तान प्राप्ति की कामना की गयी है कहीं गर्भ की रक्षा और सुख से प्रसव कराने की प्रार्थना की है।[11] तो कही पति पत्नी के परस्पर पवित्र समागम की बात कहीं है।[12] जिसका उद्देश्य गर्भ सम्बन्धी दोषों को दूर करना ही नही है अपितु समाज में स्वेच्छाचारिता और अनैतिकता पर अंकुश है। मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए एक मर्यादित मार्ग भी यजुर्वेद में सिखा दिया गया है। आज समाज में उन्मुक्त यौनाचार के कारण फैलने वाले एड्स के समान असाध्य मृत्युदायी रोगों ने विश्व को आतंकित और आशांकित कर रखा है। पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार इस रोग से बचने के लिए सावधानीपूर्वक सम्भोग का मार्ग सुझाकर समाज को एक अनैतिकता और अन्धकार के कूप में ही धकेला जा रहा है। पति पत्नी की एक निष्ठा को दर किनार कर केवल शरीर लिये किसी भी प्रकार से तृप्ति को प्राप्त करना समाज के लिये अनुकरणीय है न ही पवित्र शुद्ध कुल को आगे बढ़ाने वाली सन्तति के लिये।

यजुर्वेद में जहां पवित्र सन्तान प्राप्ति की बात कही गयी है वहीं सन्तान से भी मातृ–पितृ भक्त होने की अपेक्षा की गयी है। यज्ञ के समय यजुर्वेद में मातृशक्ति का आह्वाहन किया गया है।[13] माता को परिवार की निर्माता और संचालिका कहा है।[14] यजुर्वेद में अग्नि से मातृ और पितृसेवी होने की प्रार्थना की गयी है।[15]

गृहस्थाश्रम के सम्यक् परिपालन की स्त्री का होना आवश्यक है। स्त्री के बिना गृहस्थारम पूर्ण नहीं होता है। नारी गृहस्थ धर्म में दीक्षित होकर ही जीवन मूल्यों का प्रकाश फैलाती है। यजुर्वेद में विश्व सृष्टि की विराट रचना का आधार इष्टिकायें पुरुष और स्त्री को माना है। इनको परमात्मा ने गृहस्थाश्रम रूपी चिति की भूमिका में स्थापित कर विश्व मंगल का विधान किया है।[16] यजुर्वेद में नारी को अन्तरिक्ष लोकों को धारण करने वाली, दिशाओं को स्थिर करने वाली सब प्राणियों की स्वामिनी जलों का रस रूप, तरंग रूप कहा है।[17] जो स्त्री गृहस्थाश्रम की विद्या में पारंगत और क्रिया में कुशल हो उसके द्वारा समस्त प्राणियों का पालन पोषण करने वाला गृहस्थाश्रम सफल होता है।[18] यजुर्वेद में नारी को असाधारण गौरव प्राप्त था। उसको अग्नि के समान तेजस्वी माना है। तथा उसके जीवन की सार्थकता इसी में बताई है कि उसका सुखपूर्वक रहने के लिए अपना घर हो, वह धृतवती, पुत्रवती, पतिव्रता, विदुषी हो।[20] यजुर्वेद में नारी को परिवार का पालन पोषण करने वाली[9] तो माना ही साथ ही उसको आदर्श दाम्पत्य जीवन के भी कर्तव्य बताये हैं कि वह स्वस्थ रहे तथा परिवारजनों को भी वैसा ही बनाये। पति के साथ मिलकर सहयोग करती रहे।[21] पति भी सुखमय जीवन की कामना करते हुये पत्नी से कहती है कि तुम गृहकार्य में दक्ष हो, विदुषी हो, दूरदर्शी हो, दयाभाव से युक्त हो, तुम्हारी जैसी सुशीला, दानशीला, पत्नी पाकर मैं सौभाग्यशाली हूँ। हम लोग परस्पर ऐसा व्यवहार करें कि परस्पर कहल न हो, हमारी आयु खंडित न हो।[22]

गृहस्थाश्रम की प्रासंगिकताः

यजुर्वेद में दर्शाये गये पत्नी की कर्तव्य तथा उसे की गयी आशाएं आज भी सुखी तथा शान्तिमय पारिवारिक जीवन का आधार हैं। आज भी विवाह के उपरान्त प्रत्येक स्त्री से कुछ आशाएं की जाती है जैसे पति की सेवा करना, सन्तान का पालन पोषण करना। पति और पत्नी एक ही रथ के दो पहिये होते हैं। दोनों का ही परिवार में समान दायित्व होता है तथापि पति की अहं की सन्तुष्टि के लिये पत्नि को अधिकांश क्षेत्र में पति के मनोनुकूल व्यवहार करना पड़ता है। आज पत्नी का कार्यक्षेत्र और घर दोनों को सुचारू रूप से करने की अपेक्षा है जो पत्नी अपने कार्यक्षेत्र पर अधिक और घर पर कम ध्यान देती हैं वहीं से परिवार में असामांजस्य एवं तनाव उत्पन्न हो जाता है। अतः पत्नी का कर्तव्य क्षेत्र आज समय के परिवर्तन के साथ अधिक विस्तृत तथा व्यापक होने पर भी उसका मूल स्वर प्राचीन ही है अन्यथा परिवार में निरन्तर संघर्ष अलगाव अन्तःतोगत्वा सम्बन्ध विच्छेद की स्थिति आ जाती है।

गृहस्थ अन्य समस्त आश्रमों की धुरी कहा जाता है। गृहस्थाश्रम का आधार परिवार है। परिवार वह स्थान है जहां से सामाजिक व्यवस्था संचालित होती है। व्यक्ति अपने आर्थिक सामाजिक, सुखी जीवन के लिए परिवार की रचना करता है। यजुर्वेद में भी ऐसे परिवारिक जीवन की कल्पना की गयी जिसमें निवास स्थान इतना विस्तृत हो कि पूरा परिवार उसमें सुख से रह सके। परिवार में परस्पर सौमनस्य और प्रेम की वृद्धि हो।[23]

पाश्चात्य से प्रभावित पति पत्नी तथा अधिक से अधिक दो सन्तानों से निर्मित परिवार यजुर्वेदकाल में कल्पनातीत विषय था। तभी

यजुर्वेद में सोम प्राप्ति के लिये माता पिता, भाई मित्र, सबका सहयोग प्राप्त करने पर बल दिया गया है। उस समय गृहस्थ न केवल स्वयं की अपितु माता पिता बन्धुवर्ग आदि की समृद्धि की प्रार्थना करता था।[25]

परिवार का इतना महत्व था कि गुरू शिष्य को माता पिता भाई, कुटुम्बियों की अनुमति से ही ब्रह्मचर्य पालन की दीक्षा देता था।[26] यज्ञकर्ता गृहस्थ अपने पितरों से आदर्श जीवन की प्रेरणा लेता था।[27]

वास्तव में यजुर्वेद में दर्शाये गये आदर्श परिवार की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जिनकी तब थी। आज पाश्चात्य संस्कृति के उन्मूलन से एकाकी परिवार की अनेक बुरी परिणति सामने आ रही हैं। यदि यजुर्वेद में वर्णित संयुक्त परिवार वयवस्था आज भी लागू होती तो वृद्धाश्रम बनवाने की आवश्यकता ही क्यों होती।

काम के समान अर्थ की जीवन का महत्वपूर्ण पुरुषार्थ है। इसके बिना संसार का व्यवहार नहीं चल पाता है। गृहस्थाश्रम में ही अर्थोपार्जन होता है। धन प्राप्ति के नित्य नूतन साधनों का अनुसंधान होता है। वस्तुतः धन की आवश्यकता सभी को होती है। तभी यजुर्वेद में शरीर को स्वस्थ रखने के लिए प्रचुर धन का होना आवश्यक कहा है।[28] समय समय पर शुद्ध तथा पवित्र धन प्राप्ति की कामना की गयी है।[29]

यजुर्वेद में कहा गया है कि ऐसे धन का उपयोग किया जाये जो समाज की स्वास्थ्य रक्षा लिये आवश्यक हो।[30]

गृहस्थ ने न केवल लौकिक जीवन की समृद्धि की कामना की है अपितु कृषि की समृद्धि की भी प्रार्थना की है।[31]

आज जब भ्रष्टाचार कालाबाज़ारी, कालाधन, आदि बुराईयों से समाज और देशत्रस्त ही नहीं नष्ट प्राय भी है। उसी परिस्थिति में यजुर्वेद द्वारा वर्णित शुद्ध पवित्र धन की बात करना समाज के लिये लाभप्रद है। यदि अर्थ का यह सिद्धान्त आज मान्य तथा पालनीय हो जाये तो समाज स्वतः ही नैतिक मूल्यों का पालन करने वाला हो जायेगा तथा काले धन के कलंक से मुक्त हो जायेगा।

गृहस्थधर्म–

भारतीय गृहस्थ केवल अपनी समृद्धि के लिये उत्तरदायी नहीं होता वरन् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सुख समृद्धि के प्रति उसे उत्तरदायी होना होता है। इस दायित्व का निर्वाह गृहस्थ पंच महायज्ञों के द्वारा करता है। इसके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम में रहते हुये नित्य प्रति जाने अनजाने अनेक पाप करता है निवृत्ति के लिये यज्ञ का विधान है। यज्ञ का तात्पर्य है कर्म दूसरों के लिये करना। यजुर्वेदमें यज्ञ की महिमा का वर्णन स्थान–स्थान पर दिया गया है। मनुष्य से जो अनेक प्रकार के पाप होते हैं उनसे बचने का निर्देश किया गया है।[32]

यज्ञ के लिये पवित्र होने का आदेश दिया गया है अर्थात् उन्नति चाहने वाले गृहस्थ को तीन बार पवित्र होकर यज्ञ करना चाहिए। तीन बार पवित्रता का अर्थ है– स्थान की शुद्धि, शरीर की शुद्धि। इस प्रकार मनुष्य को स्वयं यज्ञरूप बन जाना चाहिए।[33]

ब्रह्मयज्ञ – यज्ञों में प्रथम यज्ञ ब्रह्म यज्ञ होता है। इसका उद्देश्य सबको वेदाध्ययन में लगाना है। यजुर्वेद में में अग्नि से अविद्या रूपी अन्धकार को दूर करने की प्रार्थना की गयी है।[34] विद्या प्राप्ति का अधिकार केवल पुरुषों को ही नहीं था बल्कि यजुर्वेद में कन्याओं की भी उच्च शिक्षा प्राप्ति पर बल दिया गया है जिससे वह गृहस्थाश्रम सफल बना सके।[35] जीवन यज्ञ की परिपूर्णता के लिये ब्रह्मचर्यव्रत का पालन अनिवार्य है।[36]

समय परिस्थिति तथा जीवन धारा में आमूल चूल परिवर्तन हो जाने के कारण उनका यथायथ अनुसरण करना सम्भव न होने पर भी उनकी उपदेयता स्थल विशेष पर बनी हुई है। ब्रह्मयज्ञ में वेद का अध्ययन अध्यापन होता है। आज भी ज्ञान की उपासनी की जाती है। यह ठीक है कि आज ज्ञान प्राप्ति भौतिक उद्देश्य से हो रही है। निश्रेयस गौण हो रहा है। उसके साथ ही ब्रह्म यज्ञ का परिवर्तित रूप है – धर्म कथावाचन। देवयज्ञ – देवताओं के लिये किया जाने वाला यज्ञ देवयज्ञ कहलाता है। देवताओं को यज्ञ में जो भाग दिया जाता है वह हव्य है। यजुर्वेद में देवताओं के तर्पण द्वारा ही प्रियजनों का कल्याण और पापचारी हिंसकों से रक्षा की कामना तथा ग्रहों की रक्षा की भी कामना की गयी है।[39]

वर्तमान में व्यक्तिगत रूप से विशेष अवसरों पर देवयज्ञ किया जाता है तथा नित्य न होने पर भी देवालयों आदि में हवन होता है। केवल यह विशेष अवसर पर होने लगा है। प्राकृति विपदाओं से मुक्ति के लिये सामूहिक यज्ञ का प्रचलन हो गया है। हरिद्वार स्थित शान्तिकुंज के तत्वावधान में तो अश्वमेघ यज्ञ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

पितृयज्ञ – पितर भी देवता कहे जाते हैं। उनकी कृपा से ही समाज की सुरक्षा होती है। श्राद्ध द्वारा पितरों को जो भाग यज्ञ में दिया जाता है वह दृव्य है गृहस्थ की मूलभूत आवश्यकता निवास स्थान है। यजुर्वेदीय गृहस्थ ने पितरों से सुन्दर निवास स्थान पौत्रों की वृद्धि की प्रार्थना की है। यजुर्वेद से अन्न[40] तथा वस्त्र[41] समर्पित कर देने को कहा है।

आज जीवन गतिशील, अधिक संर्घषमय अतः व्यस्त हो गया है। तभी नित्य तर्पण करना सम्भव नहीं होने के कारण प्रचलित नहीं हैं किन्तु पितृपक्ष में अमीर–गरीब, शिक्षित, अशिक्षित विशेष रूप से श्राद्ध तथा तर्पण करते हैं। केन्द्रीय सरकारों की सूची में पितृविसर्जनीय अमावस्या का अवकाश पितृयज्ञ की प्रासंगकिता को ही स्पष्ट करता है।

बलिवैश्वेदव यज्ञ–मनुष्य की अतिरिक्त संसार की जो अन्य जीव सृष्टि है उसको भी अपनी सामर्थ्यानुसार भोजन देना चाहिए। यजुर्वेद में गृहस्थ धर्म के परिपालन के लिये बलिवैश्वदेव यज्ञ करने पर बल दिया गया है।[42]

बलिवैश्वदेव कर्मकाण्ड की दृष्टि से आज अधिक नहीं होता है किन्तु दिशाओं, वनस्पतियों, अश्वत्थ, तुलसी आदि की पूजा आज भी परिवारों में होती है।

नृयज्ञ – अतिथि का सत्कार करना, नृयज्ञ कहलाता है। यजुर्वेद में अतिथि सत्कार पर बल देते हुये कहा गया है कि अतिथि को अपने घर में कम से कम तीन रात्रि तक आवास प्रदान कर सन्तुष्ट रखना चाहिए। सद्गृहस्थों के आवास पर सोमरस सदा तैयार होना चाहिए।[43]

अतिथि का महत्व प्राचीनकाल से लेकर आज तक समान रहा है। सरकार भी अतिथि सत्कार की भावना के प्रति जागृत हो गयी है अभी पर्यटन मन्त्रालय ने अभियान चलाया – 'जनता जागृत हो अतिथि देवो भव' की भावना से।

पंच महायज्ञ की अतिरिक्त भी यजुर्वेद में गृहस्थ के धर्म में व्रत, जप, यम, नियम आदि का मूहत्वपूर्ण स्थान रखा है। यजुर्वेद में गृहस्थ के लिये व्रत नियमों का पालन तथा जप को आवश्यक बताया है।[44]

आज का युग डिप्लोमेसी का युग है। कटु से कटु और कठोर से कठोर तथ्य को भी इस ढंग से व्यक्त करें कि सुनने वाला तिलमिला भी न सके। राजनीति में तो इसकी अत्यधिक आवश्यकता होती है। नित्य प्रति सांसद में असंसदीय भाषा पर आपत्ति उठाई जाती है और उनको निरस्त कर दिया जाता है। ऐसे समय में यजुर्वेद का वाणी की शुद्धि पर दिया गया बत[45] ग्रहणीय है।

निष्कर्षः

वस्तुतः यजुर्वेद में प्रतिपादित चारों आश्रमों एक दूसरे पर आश्रित हैं और एक दूसरे के पूरक भी। यद्यपि चारों आश्रमों का अपना अपना महत्व है किन्तु उन सभी में गृहस्थाश्रम सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। पुरुषार्थ चतुष्ट्य में से प्रथम तीन पुरुषार्थ धर्म, अर्थ काम का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। गृहस्थाश्रम के साथ है अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष तक पहुंचने का आधार भी गृहस्थाश्रम ही है। इसी कारण गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ कहा गया है। वस्तुतः यजुर्वेद में वर्णित गृहस्थाश्रम आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना वैदिक काल में था।

सन्दर्भ

1. यजुर्वेद 8/8
2. वही 14/12
3. वही 12/27
4. मनु 6/87, 89, 90
5. यजुर्वेद 15/56
6. वही 6/13
7. वही 6/13
8. वही 2/22
9. वही 8/51
10. वही 25/46
11. वही 20/40
12. वही 8/29
13. वही 10/26
14. वही 8/5
15. वही 19/11
16. वही 14/7
17. वही 14:/4
18. वही 14/1
19. वही 4/2
20. वही 14/3
21. वही 6/11
22. वही 4/22
23. वही 8/8
24. वही 4/20
25. वही 19/46
26. वही 6/9
27. वही 19/49
28. वही 2/24
29. वही 4/5, 5/36, 27/4, 19/46, 18/11
30. वही 15/7
31. वही 5/37
32. वही 3/45
33. वही 2/1
34. वही 19/69
35. वही 19/44
36. वही 4/17
37. वही 2/29
38. वही 25/48
39. वही 25/48
40. वही 2/29
41. वही 2/32
42. वही 14/11
43. वही 19/14
44. वही 5/40
45. वही 6/14